JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आचार्य विद्यासागर जी की साहित्य साधना

जैन श्रीमति विनीता शोधार्थी
हिन्दी विभाग अवधेष प्रताप सिंह विष्वविद्यालय, रीवा
शोध निर्देषिका –डा.उषा नीलम

सारांष – जैन धर्मावलम्बियों में आज जिन संतों की व्यापक स्वीकृति है और जिनके वैचारिक व्यवहार को निष्कलंक कहा जा रहा है, उनमें आचार्य विद्यासागर प्रमुख हैं। आचार्य जी की जैन–गीता, समयसार, द्वादश अनुप्रेक्षा, गुणोदय, कल्याण मंदिर स्तोत्र, रयण मंजूषा, इष्टोपदेश, नियमसार, समन्तभद्र की भद्रता अनूदित रचनाएँ हैं। ये पूर्ववर्ती महत्वपूर्ण रचनाकारों की हैं, जिन्हें अनुवाद के द्वारा हिन्दी में सुलभ कराया है। आचार्य विद्यासागर की इन काव्य कृतियों में मौलिक रचनाओं में 'मूकमाटी' महाकाव्य सर्वाधिक चर्चित हुआ है तथा शतक काव्य संग्रह भी काव्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुये है। मौलिक काव्य–संग्रहों के अलावा अनूदित काव्य–संग्रहों में भी आचार्य श्री का काव्यानुवाद कर्म के प्रति साहित्यिक उमंग और उत्साह भी दिखाई देता है, जो सरस और व्यावहारिक बन पड़ा है।

प्रमुख षब्दावली–मूकमाटी,महाकाव्य,काव्यानुवाद,दिगम्बराचार्य।

षोध अध्ययन क्षेत्र – मेरा षोध जैन दिगम्बराचार्य श्रीविद्यासागर महाराज के द्वारा रचित साहित्य का अध्ययन करना है। उनके द्वारा रचित साहित्य एवं मूकमाटी महाकाव्य का अध्ययन करना है एवं उसके गूढ भावनाओं का अध्ययन करना है

प्रस्तावना – जैन धर्मावलम्बियों में आज जिन संतों की व्यापक स्वीकृति है और जिनके वैचारिक व्यवहार को निष्कलंक कहा जा रहा है, उनमें आचार्य विद्यासागर प्रमुख हैं। उनकी स्थिति संत के अलावा कवि, विचारक की है। इसी कारण उनके बारे में विमर्श का क्षेत्र और व्यापक हो गया है। आचार्य विद्यासागर की काव्य कृतियाँ दोहा–दोहन, तोता क्यों रोता? मूकमाटी, विद्या काव्य भारती, चेतना के गहराव में, नर्मदा का नरम कंकर, समाधि सुधा शतक, कलशा–गीत प्रमुख है। आचार्य जी की जैन–गीता, समयसार, द्वादश अनुप्रेक्षा, गुणोदय, कल्याण मंदिर स्तोत्र, रयण मंजूषा, इष्टोपदेश, नियमसार, समन्तभद्र की भद्रता अनूदित रचनाएँ हैं। ये पूर्ववर्ती महत्वपूर्ण रचनाकारों की हैं, जिन्हें अनुवाद के द्वारा हिन्दी में सुलभ कराया है। इन कृतियों के अलावा आचार्य जी के प्रवचनों के संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। ये कृतियॉ प्रायः दार्शनिक प्रक्रियाओं को काव्यात्मक रूप प्रदान करती हैं। काव्य परम्परा में दार्शनिक कवियों की विशाल परम्परा है। कवि रूप में उनकी प्रतिष्ठा इसी आधार पर हुई है कि उनमें उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का विस्तार किस हद तक संभव हुआ है। संतों की वाणियों में विशेषकर सम्प्रदाय विशेष की स्थापनाओं और तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों की काव्यात्मक परिणति

मिलती हैं। तुलसी, सूर, कबीर, नानक आदि प्रमाण हैं। इसी क्रम में आचार्य विद्यासागर के रचनातमक प्रयोग सामने आते हैं।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में 'संत–साहित्य' का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन 'संतों' ने अपनी साधना और तपश्च्र्या के बल पर जहाँ अपना आत्मकल्याण किया है, वहीं दूसरी ओर भटके हुए समाज को भी एक ऐसी दिशा प्रदान की जिससे कि वह जीवन के समस्त संतापों से मुक्त हो सके। फिर आज तो इस भौतिकवादी युग में वासनाओं की मदिरा पीने वाले मूर्च्छित और मरणासन्न संसार को वीतराग प्रभु की करुणा रस पूरित संजीवनी की आवश्यकता है। सौभाग्य है इस अहिंसामयी भारत देश का जहाँ यत्र–तत्र महामनीषी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन मनीषियों में से अनेकों दिगम्बराचार्यों ने अपने तप, त्याग और ज्ञानाराधना का परिचय दिया है। ऐसे ही संत शिरोमणि परमपूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज हैं, जिन्होंने 'विद्या' के सागरत्व को प्राप्त कर, उसमें से ज्ञान, भक्ति, करुणा, अहिंसा, रचना, काव्य, धर्म और वैराग्य आदि के रत्नों को निकाला है और इन रत्नों की चमक से सम्पूर्ण देशवासी चमत्कृत होकर श्रद्धावनत हुए हैं। ऐसे 'संत' वर्धमान के पश्चात् इस धरित्री पर नहीं हुए, जिन्होंने आत्मकल्याण और लोककल्याण की इतनी ऊँचाईयों का संस्पर्श किया हो।

आज का समाज मानव मूल्यों के जिस संकट के दौर से गुजर रहा है, उसे इस दौर से उबारने के एिल आचार्य श्री का रचनात्मक कृतित्व एक कुशल मनोवैज्ञानिक वैद्य की तरह रोगों का निदान और उपचार दोनों ही प्रस्तुत कर रहा है। फिर विज्ञान के इस विनाशकारी युग में उनके भगीरथ प्रयास द्वारा ज्ञान की ऐसी गंगा प्रवाहित की गई है, जिसके द्वारा इस संसार के विश्वव्यापी विनाश को रोका जा सकता है। उनकी वाणी से निसृत नवनीत को प्राप्त कर, विकारयुक्त हृदय भी निर्मल बन जाता है और भौतिकता के कीचड़ में फंसी सृष्टि अपना कायाकल्प कर सकती है। इसका मूल कारण यह है कि आचार्य श्री ने धार्मिक, सांस्कृतिक और पारम्परिक धारणाओं की जटिलता को हटाकर उनकी अत्यन्त सरल और सहज व्याख्या प्रस्तुत की है। जो आचार्य श्री की असाधारण उपलब्धि है। इसी कारण वे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की विराट अभिव्यक्ति के मुक्तिद्वार खोलने में सफल हुए हैं। फिर ऐसा बिरला ही संत होगा, जिसने साधना को जीवन की कलात्मकता के अनुरूप अभिव्यक्त किया हो, वे अपने आप में अनोखे ही संत हैं, जिनकी वाणी से धर्म, दर्शन, कर्म, संस्कृति तथा अध्यात्म का पावन पंचामृत निसृत होता है।

आचार्य विद्यासागर के साहित्य का अध्ययन– आचार्य विद्यसागर जी का जन्म 10 अक्टूबर 1946 में कर्नाटक प्रांत के बेलगाम जिले के सदलगा ग्राम के निकटवर्ती ग्राम 'चिक्कोड़ी' में हुआ था। आपके पिता श्री मल्लप्पा पारसप्पा जी अष्टगे एवं माता श्रीमती श्रीमती जी अष्टगे जैन जाति के धनाढ्य एवं धार्मिक संस्कारों से ओत–प्रोत तथा प्रतिभा सम्पन्न रहे हैं। आचार्य विद्यासागर प्रकृति प्रेमी, नैसर्गिक प्रतिभा के धनी और इन्द्रियजित साधक संत हैं। आपकी काव्य रचनाओं में मूकमाटी महाकाव्य दोहा–दोहन, शतक–संग्रह आदि संत काव्य परम्परा के निर्वाहक काव्य ग्रंथ है।

अध्यात्म के ताने–बाने से बुना उनका साहित्य मानव को सुख–धाम की ओर प्रवृत्त करता है। जहाँ भय, आतंक, परिषह घुटने टेकते हैं, वहीं वासना भोग अपनी राह बदलते हैं। तब श्रृंगार भी वैराग्य में परिवर्तित हो जाता है। वे स्वतंत्रता के हिमायती हैं। रूढ़ियों, पाखण्डों, बाह्याडम्बरों के विरोधी हैं। उनका काव्य जीवों को ऊर्ध्वमुखी होने की प्रेरणा देता है–

पर में सुख कहिं है नहीं, खुद ही सुख की खान। निजी नाभि में गंध है, मृग भटके बिन ज्ञान।।[1]

[1] दोहा–दोहन, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 25

वे कहते हैं कि ''परमात्मा आत्मा में ही निवास करता है–

कहाँ भटकता तूँ
बीहड़ जंगल में
बाहर नहीं
हे संत!
वसन्त–बहार
भीतर मंगल में है।[2]

उनकी कविता/वाणी से शांति की अजस्त्र–धारा प्रवाहित है। वे निर्गन्थ साधु और निष्काम योगी हैं, निर्विकारी संत हैं। सच्चे अर्थों में वे जनवादी कवि हैं और मुक्ति–मार्ग के निर्देशक भी हैं–

व्यक्तित्व को अहम को, मद को मिटा दे,
तूँ भी 'स्व' को सहज में, प्रभु में मिला दे।।[3]

पाखण्ड के विरोध में उनकी ये काव्य पंक्तियाँ सहज ही में जन–मानस को आकर्षित करती हैं–

होता न धर्म वह पुस्तक, पिच्छिका से,
ना प्राप्त हो पठन–पाठन की क्रिया से।
होता न धर्म मठ मंदिर वास से भी;
तो प्राप्त हो न कच–लुंचन कर्म से भी।।[4]

आचार्य विद्यासागर की इन काव्य कृतियों में मौलिक रचनाओं में 'मूकमाटी' महाकाव्य सर्वाधिक चर्चित हुआ है तथा शतक काव्य संग्रह भी काव्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुये है। कवि की काव्य कृति 'डूबो मत, लगाओ डुबकी' वैज्ञानिक और आधुनिक सभ्यता से उपजी विद्रूपताओं के खिलाफ आत्म चेतना का शंखनाद फूंकती हुई आत्मिक क्रांति का आह्वान करती है। सच्चा और सरल जीवन जीने के लिए एवं संसार–चक्र भ्रमण से बचने के लिए व्यक्ति को माया के प्रभाव से बचना नितान्त आवश्यक है। कवि की 'खो जाने दो' नामक कविता इसी भाव को व्यक्त करती हुई कवि की आस्थाओं को रेखांकित करती हैं–

अरी! वासना
यथा नाम तथा काम है तेरा
तुझमें सुख का
निवास वास ना!
तुझमें है गहराई कहाँ?
और मैं
गहराई में उतरने का
हामी हूँ।[5]

'**डूबो मत, लगाओ डुबकी**' नामक कविता भी इस संग्रह की एक सार्थक कविता है, जो प्रतीक अर्थ में अपने 'अस्तित्व' को प्राप्त करने का बोध देती है। भाव और भाषा शैली की दृष्टि से यह कृति अपने महत्व को अक्षुण्ण बनाए रखती हैं।

आचार्य विद्यासागर की दोहा–दोहन काव्य कृति है जो ''जंगल में शेर की तरह और मनुष्यों में संतों की तरह 'दोहा' भी कृतियों में अपनी स्पष्ट छाप बनाए चलता है। मात्रिक छंद 'दोहा' के माध्यम से संत कवि ने अपने आराध्य देव चौबीस तीर्थंकरों की वंदना की है, जिनमें लौकिक तड़प अलौकिकता के माध्यम से उभरती है–

तुम जिन मेघ, मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ!
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ।।[6]

इसी तरह आपके काव्य संग्रह 'तोता क्यों रोता ?' आचार्य विद्यासागर जी की 55 कविताएँ संगृहीत हैं, जिनमें मुख्य रूप से सामाजिक भावना का उत्कर्ष दिखाई देता है। लोक मंगल की कामना में 'हरित की हंसी' में लोक कल्याणकारी जगत् का स्वरूप दिखाई देता है–

[2] तोता क्यों रोता?, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 64
[3] विद्या–काव्य–भारती, आचार्य विद्यासागर, निजानुभव शतक पद्य, पृष्ठ 102
[4] योगसार, आचार्य विद्यासागर, पद 47
[5] डूबो मत, लगाओ डुबकी, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 10
[6] दोहा–दोहन, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 8

हे! हर्ष–विषाद मुक्त
हरि–हर!
हर हालत में
हर सत्ता से
हरीतिमा–हरिताभ
फूटती रहे
हंसती रहे
धन्य![7]

'मूकमाटी' महाकाव्य आचार्य विद्यासागर जी का प्रमुख काव्य है। 'मूकमाटी' महाकाव्य रूपक महाकाव्य जैन दर्शन के धरातल पर आज के परिप्रेक्ष्य में काव्य शास्त्र की नई भावभूमि प्रस्तुत करता है। माटी को आधार बनाकर मुक्त छंद में भाव और भाषा, शैली की दृष्टि से यह एक अनुपम प्रयास है। जिसमें कवि की दृष्टि पतित से पावन बनने/बनाने की ओर दिखाई देती है। मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का दर्पण है। यह महाकाव्य। मानवता को असत्य से सत्य की ओर नीचे से ऊपर की ओर, हिंसा से अहिंसा की ओर, एकांत से अनेकान्त की ओर, अशांति से शांति की ओर तथा बाहर से भीतर की ओर ले जाने वाला यह महाकाव्य अलौकिक और अनूठे प्रसंगों से भरा पड़ा है। सच्ची श्रद्धा, साधना, उपासना सेही यह संभव है। जिसका औदात्य भाव निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

यहाँ ... सब का सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख–छाँव,
सबके सब टलें–
अमंगल–भाव,
सबकी जीवन–लता
हरित–भरित विहंसित हो
गुण के फूल विलसित हों
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठे
... बस![8]

मूकमाटी का कवि संत और साधक होते हुए भी जनवादी है। सामाजिक अव्यवस्थाओं का यथार्थ–संकेत चित्रण होने के साथ ही साथ आदर्श समाधान का सहज रूप भी प्रस्तुत किया गया है–

अब धन–संग्रह नहीं
जन–संग्रह करो![9]

शांत रस की स्थापना में मूकमाटी महाकाव्य का योगदान हिन्दी साहित्य में विशिष्ट उपलब्धि माना जायेगा। जहाँ श्रृंगार को आध्यात्मिक चिराग का जामा पहनाया गया है, वहीं स्वयं यायावर की भांति कथनी–करनी में एकता लाकर रसराज शांत–रस पर बल दिया गया है–

शांत–रस का क्या कहें
संयम–रत धीमान को ही
'ओम' बना देता है।[10]

आचार्य श्री साधनाशील संत के साथ–साथ उच्चकोटि के कवि भी है। उन्होंने अतुकान्त एवं नई काव्य शैलियों में गहन, गंभीर चिंतन अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। कुछ कविताएँ तो इतनी मर्मस्पर्शी हैं कि वे पाठक को सहज में ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं–

ऐसा कोई जीवन नहीं है
कि
जिसमें
एक भी गुण नहीं मिलता हो
नगर, उपनगर में
पुर, गोपुर में
अभ्रंलिहा प्रासाद हो

[7] तोता क्यों रोता?, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 23
[8] मूकमाटी, मानस–तरंग, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 478
[9] मूकमाटी, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 467
[10] मूकमाटी, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 159–160

या कुटिया
जिसके पास
कम से कम एक तो
प्रवेश द्वार
होता अवश्य।[11]

नर्मदा का नरम कंकर कविता संग्रह भी सिर्फ बाहरी लिखावट ही नहीं, वरन वह भीतरी सजावट भी है। जीवन के गंभीर सत्यों का उद्घाटन/मूल्यांकन भी कविता होता है। आचार्य श्री की ये संग्रहीत कविताएँ जीवन मूल्यों को कुंदन की तरह बनाए रखती हैं, हीरे की तरह तराशती रहती हैं। आचार्य श्री ने संवेदना को इस रूप में व्यक्त किया है–

ओ री स्पर्शा!
तेरा वेदन
संवेदन
क्या सो गया है?
क्या खो गया है?
आज तुझे
हो क्या गया है?[12]

उपसंहार–मौलिक काव्य–संग्रहों के अलावा अनूदित काव्य–संग्रहों में भी आचार्य श्री का काव्यानुवाद कर्म के प्रति साहित्यिक उमंग और उत्साह भी दिखाई देता है, जो सरस और व्यावहारिक बन पड़ा है। इस अनुवाद कर्म से न सिर्फ हिन्दी भाषा ही समृद्ध हुई है, वरन् हिन्दी भाषा–भाषी जनता के प्रति आचार्य श्री का प्रेम भी दिखाई देता हैं अनुवाद 'कला और विज्ञान' दोनों ही है। इस दृष्टि से आचार्य विद्यासागर ने प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत भाषाओं के उत्कृष्टतम काव्य ग्रंथों का हिन्दी पद्यानुवाद किया है, जो वास्तविक रूप में मूल की आत्मा के साथ ही साथ मौलिक भी बन पड़े हैं। इन अनूदित संग्रहों में कवि की मूल ग्रंथ/ग्रंथकार के प्रति आदर की भावना सर्वत्र विद्यमान है।

इस तरह आचार्य विद्यासागर जी की साहित्य साधना विपुल है। आपकी साहित्य साधना में मूल्यों का श्रृंगार है। आतंकवाद और रोगों पर प्रहार है। भारतीय जीवन शैली के चरखा, मातृभाषा हिन्दी, इंडिया नहीं भारत अदि प्रतिमानों से सजी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दोहा–दोहन, आचार्य विद्यासागर, राजकण प्रकाशन, टीकमगढ़ (म.प्र.), 1987।

2. तोता क्यों रोता?, आचार्य विद्यासागर, मानकचंद सुरेशचंद जैन, नयावाजार अजमेर सन् 1988।

3. विद्या–काव्य–भारती, आचार्य विद्यासागर, निजानुभव शतक पद्य, शिक्षा समिति कटंनी प्रकाशन 1999।

4. डूबो मत, लगाओ डुबकी, आचार्य विद्यासागर, मसमल महावीर प्रसाद झांझरी झुमरीतलैया, 1984।

5. मूकमाटी, मानस–तरंग, आचार्य विद्यासागर, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, 1988।

6. नर्मदा का नरम कंकर, आचार्य विद्यासागर, कपूरचंद जैन, अमरावती प्रकाशन, 1980।

[11] चेतना के गहराव में, आचार्य भावनाशतक, पद्य 92, पृष्ठ 61
[12] नर्मदा का नरम कंकर, आचार्य विद्यासागर, पृष्ठ 36